अहंकार

आध्यात्मिक साधना का परम शत्रु

श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी के अनमोल पुष्प

तृतीय पुष्प

प्रकाशक :

श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान

Shri Prannath Global Consciousness Mission

संपर्क सूत्र :

श्री निजानन्द आश्रम

नेशनल हाईवे नं ८ बाईपास, सयाजीपुरा, वडोदरा **390019**

Email : premseva7@yahoo.com; manulpdc@yahoo.com
Phones: 989-800-0168, 787-415-1371, 942-736-4535

श्री निजानन्द आश्रम

रतनपुरी, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश

Phone: 9811072951

Lord Prannath Divine Center, U.S.A/ Canada
914, 2nd Street, Macon, GA-31201
Email : jagni7@yahoo.com; jagnicorp@yahoo.com
Phones: 011-973-760-9238; 011-478-808-4079
Website: www.nijanand.org

श्री निजानन्द आश्रम, साढ़ोली

पो. झबरेडा, जिल्ला. हरिद्वार, उत्तराखंड

Email : shrinetrapalji@gmail.com;
Website : anantshriprannath.com

मुद्रक :

दर्शन प्रिन्टर्स

५, रघुनाथ हिन्दी हाईस्कूल के सामने, मेम्को-बापुनगर रोड,

बापुनगर, अमदावाद. मो. ९७२५२ १९९०८

भूमिका

अनन्त सृष्टियों के अस्तित्व के जो मूल आधार हैं, सभी आत्माओं के जो एक मालिक हैं, सर्व शक्तियों के जो मूल स्त्रोत हैं, ऐसे प्रियतम परमात्मा ही प्राणनाथ हैं। जी हाँ, हम सभी उस आनंद स्वरुप सच्चिदानन्द प्रियतम रुपी सागर की लहरें हैं, आत्मायें हैं। आध्यात्मिक मार्ग में इस प्रकार का परस्पर आत्मीयता का भाव निहीत होता है। सम्पूर्ण मानव जाति को एकात्म-भाव से, दिव्य प्रेम की तार से जोड़ना ही धर्म का वास्तविक उद्देश्य है।

साथियों ! संसारी खेल में प्रियतम प्राणनाथ सत्य और असत्य की पहचान करा कर संसार को एक सूत्र में जोड़ने हेतु ब्रह्मज्ञान लेकर पधारे हैं। इसे तारतम वाणी भी इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह दिव्य ज्ञान, मोह माया के अज्ञानरुपी अंधकार को चीर कर परम आनन्ददायी दिव्य प्रकाश की ओर ले जाने वाला है।

श्री प्राणनाथ जी (श्री जी) के श्रीमुख से अवतरित यह वाणी श्री कुलजम स्वरुप महाग्रन्थ के रुप में स्थित है, जो वर्तमान संसार को मिली हुई अनमोल आध्यात्मिक संपदा है। इसमें संसार के समस्त धर्मग्रन्थों में निहित सत्य ज्ञान के रहस्यों को स्पष्ट कर के उनका एकीकरण किया गया है। इसमें विशेष रुप से उन अनादि आध्यात्मिक प्रश्नों का जैसे कि - मैं कौन हूँ ? कहां से आया हूँ ? मेरा प्रियतम कौन है ? आदि का निराकरण किया गया है। श्री जी फरमाते हैं कि मनुष्य मात्र प्रियतम परमात्मा की आत्म-प्रिया है, उनकी आत्म-अंगना है। इस भाव को दृढ कर लेने से आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा का सुख ले सकती है।

तारतम ज्ञान का इस ब्रह्मांड में अवतरण सन् १६२१ ई. में हुआ, जब परब्रह्म अक्षरातीत ने अपने आवेश स्वरुप से श्री निजानन्द स्वामी धनी श्री देवचन्द्रजी (१५८१-१६५४) को दर्शन दिया। वही बीजरुप ज्ञान आगे चलकर श्री कुलजम स्वरुप रुपी वटवृक्ष बन गया, जो आज संसार को सुख शीतलता प्रदान कर रहा है। श्री कुलजम स्वरुप में निहित ब्रह्मज्ञान का अवतरण १६५९ ई. (नौतनपुरी, जामनगर) से १६९२ ई. (पन्ना, म.प्र.) तक ३३ वर्ष के समयावधि आत्म-जागृति यात्रा के दरम्यान

अलग-अलग जगह पर हुआ। इसमें कुल १८,७५८ चौपाईयां हैं, जो १७ रत्नरुप ग्रंथों में प्रस्तुत हैं। निज-आनन्द(शाश्वत सुख) के पथ पर अग्रसर आत्मखोजी के लिए तो यह वाणी सच्चिदानन्द परब्रह्म अक्षरातीत का ज्ञानमयी स्वरुप ही है।

इस वाणी में जो 'महामति' की छाप है, वह प्रियतम परब्रह्म की महानतम दिव्य शक्तियों का सामूहिक स्वरुप है। मिहिरराज ठाकुर(१६१८-१६९४ ई.) जिनका लौकिक नाम है, पांच शक्तियां विराजमान होने से वे प्रियतम परब्रह्म की मेहर से 'महामति' पद की शोभा प्राप्त करते हैं और इनके तन में विराजमान परब्रह्म अक्षरातीत की शक्ति की पहचान कर लेने वाला 'सुन्दरसाथ' समुदाय उन्हें प्राणनाथ कह कर संबोधित करता है, यथार्थ में क्षर पुरुष एवं अक्षरब्रह्म से परे अक्षरातीत परब्रह्म ही प्राणनाथ है।

जामनगर राज्य (गुजरात) में दीवान पद पर आसीन मिहिरराज ने अपने सद्गुरु निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्र जी (१५८१-१६५४ ई.) की प्रेरणा से भौतिक सुखों को त्याग कर आत्म-जागृति अभियान का महासंकल्प लिया। बारह साल की आयु में वे अपने सद्गुरु के चरणों में आये और तारतम ज्ञान प्राप्त किया। अद्वैत प्रेम के स्वरुप की पहचान करके स्वयं सेवा, समर्पण और प्रेम की मूर्ति बन गये। आध्यात्मिकता को अपने जीवन के केन्द्र में रख कर ही उन्होंने अपना कुटुम्ब धर्म, समाज धर्म, देश धर्म और मानव धर्म निभाया। उन्होंने मानवतावादी दृष्टि से प्रत्येक मानव में निहित आत्म-चेतना को परमात्म-चेतना से जोड़ा। व्यक्ति, समाज, धर्म और विश्व मंच को एक आध्यात्मिक कड़ी से जोड़ा। अतः उनके समन्वयात्मक प्रयासों का और उनकी वाणी का सम्यक मूल्यांकन संकीर्ण सांप्रदायिक परिधि से बाहर हो कर ही संभव है।

इसके साथ साथ सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्नों को भी उन्होंने सुलझाया। वे परिवर्तनकारी सामाजिक क्रान्ति में निमित्त रुप बने। धर्म के नाम पर फैले अंध-विश्वास, अस्पृश्यता, छुआ-छूत, जाति-पाति और ऊंच-नीच, भेदभाव, हिंसा, विविध प्रकार के व्यसनों में लिप्तता, स्त्री-वर्ग को होने वाले

अन्याय, धार्मिक असहिष्णुता, दिखावे मात्र का धर्मपालन, कर्मकांडोंकी जड़ता, धार्मिक क्षेत्र में बाह्यआडंबर द्वारा शोषण आदि सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने आज से ४०० वर्ष पूर्व की रुढ़िग्रस्त मिथ्या मर्यादाओं में जकड़े हुए समाज को नवचेतना प्रदान की, जिसकी आज के सामाजिक जीवन में और भी आवश्यकता है।

भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने भी अहिंसा आंदोलन और चरखे से क्रांति की प्रेरणा श्री प्राणनाथ जी के तारतम ज्ञान से अपने बचपन में अपनी माता जी पुतलीबाई के माध्यम से प्राप्त की थी। ऐसे अनेको विश्व के महान मानवतावादी विचारकों पर श्री प्राणनाथ जी के ज्ञान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

इस पुष्प में प्रस्तुत दिव्य वाणी की चौपाईयां आपके समक्ष श्री प्राणनाथ जी के तारतम ज्ञान की महिमा प्रदर्शित करेगी।

साथियों ! इस तारतम वाणी के बल से ही १६७८ ई. (संवत १७३५) में हरिद्वार में महाकूंभ के पर्व पर महामति जी विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध के रुप में जाहिर हुए थे। इतना ही नहीं, मुगल सम्राट औरंगजेब के दरबार में सर्वधर्म समभाव का संदेश लेकर अपने बारह सुन्दरसाथ को भी भेजा और मुगल सम्राट को धर्म का सच्चा स्वरुप बताया साथ ही अनेकों हिन्दू राजाओं को भी ज्ञान से जाग्रत किया। अंततः उन्हें मिले वीर बुन्देला छत्रसाल (१६४८-१८३१ ई.), जिन्होंने उनके संरक्षण में बुंदेलखंड में आदर्श आध्यात्मिक राज्य की स्थापना की और उसकी राजधानी पन्ना शहर (म.प्र.) को वैश्विक आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र बनाया।

साथियों ! ज्ञान और प्रेम तो बांटने से ही बढ़ता है। अतः आज विश्वभर में करोड़ों लोग इस ब्रह्मज्ञान के मार्गदर्शन में स्वयं आत्म-जागृति प्राप्त करके संसार को लाभान्वित करने की सेवा कर रहे हैं। श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान से प्रेरित साथी इस सद्भावना से आप तक श्री प्राणनाथ वाणी के इस पुष्प को लेकर पहुंचे हैं।

आपका जीवन इस पुष्प की दिव्य खुश्बू से भर जाये और आप स्वयं भी इस महक को फैलाने में जूट जायें, हम यही हार्दिक मंगल कामना करते हैं। आपके आत्मस्वरुप में कोटि-कोटिसप्रेम प्रणाम।

'मेरी मेरी' करते दुनी जात है।

आत्म-प्रेमी साथियों ! अखंड सुख और शांति प्राप्त कराने वाले दिव्य प्रेम के मार्ग पर आप का हार्दिक स्वागत है। मिथ्या अहंकार के भस्मिभूत हुए बिना हृदय में प्रियतम अक्षरातीत का प्रेम प्रकटनहीं हो सकता है। मान, मैं-पना, मैं-खुदी, अभिमान, गर्व, बड़ाई, घमंड और प्रतिष्ठा या 'फाल्सईगो' ये सभी नाम अहंकार ही के हैं, जो मनुष्य की आध्यात्मिक साधना में सबसे बड़ा शत्रु है। सत्य ब्रह्मज्ञान रुपी अमृत का रसपान कर के ही इसे पहचानना संभव है। उसकी उपस्थिति के प्रति जाग्रत रहना और फिर उसे मिटाना भी ब्रह्मज्ञान ही से संभव है, मिथ्या अहंकार (अहंता) के क्षय होने पर ही प्रेमपूर्ण जीवन का प्रवेशद्वार खुल सकता है।

मनुष्य अपनी बाल्यावस्था और युवावस्था लोभ में जीता है और बुढ़ापा अपनी सांसारिक उपलब्धियों के अहंकार में। अहंकार हमेशा या तो भूतकाल की भाषा बोलता रहता है, या फिर भविष्य की- वर्तमान की तो वह बात ही नहीं करता! "मैं करोड़पति हूं, मैंने ऐसा कर दिया, मैंने वैसा कर दिया" - ऐसी बातें करके अहंकार व्यक्ति को बार बार अपनी उपलब्धियों के भूतकाल में ले जाता है। दूसरी ओर, उसका लोभ और मोह भविष्य की बातें कहते रहते हैं कि 'मैं ऐसा करदूंगा, वैसा करदूंगा।"

इस तरह, लोभ की परिपूर्ति ही अहंकार का रुप धारण कर लेती है। मनुष्य को पल भर की भी फुर्सत नहीं होती। अनंत सृष्टियों के प्रेरक और रचयिता प्रियतम परमेश्वर के चरणों में समर्पित होने की तो बात ही कहाँ? अपने क्षणिक अस्तित्व के गर्व में वह अंतिम सांस तक भागता जाता है, बस भागता ही जाता है। उसे पता भी नहीं चलता की जीवन का अनमोल अवसर कैसे व्यर्थ में गँवा दिया। मृत्यु के अचानक आगमन से - बिना मुहूर्त निकाले ही - उसकी शमशान यात्रा प्रारंभ हो जाती है!

साथियों! यह जगत एक ऐसा अद्‌भूत, मोहक और आकर्षक तमाशा है, जिसे देख कर मनुष्य इतना भ्रमित हो जाता है कि उसे जिंदगी के अंतिम सांस तक इतना भी पता नहीं होता कि - मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरी आत्मा का मालिक कौन है? आखिर जगत में मेरे आने का प्रयोजन क्या है?

मनुष्य के अंतःकरण में 'मैं' और 'मेरा' का अहंभाव उसके स्वार्थपूर्ण वृत्ति के कारण ही हमेशा बना रहता है। यह 'मैं पने' का भाव ही उस की अनियंत्रित सांसारिक इच्छाओं का जन्मदाता और दुःख एवम् अशान्ति की जड़ भी है।

भ्रम की निद्रा में सोये मानव को जगाने के लिए श्री प्राणनाथजी फरमाते हैं :

मेरी मेरी करते दुनी जात है,
बोझ ब्रह्माण्ड सिर लेवें।
पाव पलक का नहीं भरोसा,
तो भी सिर सरजन को न देवें॥ किरंतनः५/२

"यह मेरा है, यह सब मेरे ही लिए है," ऐसा कहते और सोचते हुए मनुष्य सारी दुनिया का बोझ अपने सिर पर लिए घूमता फिरता है। संतान, परिवार, संपत्ति, सौंदर्य, नाम और यश का मोह उसे इतना घेर लेता है कि उसकी परिपूर्ति के लिए वह कठिन से कठिन दुःख झेलने को तैयार हो जाता है। इसी में अपना सारा जीवन वह व्यर्थ में गँवा देता है। एक पलक के चौथाई भाग जितना भी जीवन का भरोसा नहीं है, कि अपनी अगली सांस भी आने वाली है या नहीं! फिर भी वह मोह और अज्ञान वश, अपने सर्जनहार प्रियतम परमात्मा के चरणों में समर्पण नहीं कर पाता हैं।

बहुरुपिया अहंकार

साथियों! अहंकार एक ऐसा पर्दा है, जिस की उपस्थिति में हम अपने आप को अपने सच्चे आत्म-स्वरुप में नहीं देख पाते हैं। हम इसी वजह से हमारे प्रियतम परमात्मा के दिव्य स्वरुप और आत्मा के निज-सुख से वंचित रह जाते हैं। हम अपने आप को शरीर, मन या बाह्य जगत के संदर्भ में ही समझते हैं, और इन्हीं के साथ अपने आप को जोडकर सबको अपनी झूठी पहचान देते हैं। इस तरह,

आत्मा का शाश्वत, सच्चिदानंद स्वरुप अत्यन्त संकुचित हो जाता है। फिर अहंकार और मन दोनों साथ मिलकर आत्मा के ऊपर सवार हो जाते हैं। हम भ्रम से ऐसे ग्रसित हो जाते हैं कि आत्मा को ही खो देते हैं, गहरी विस्मृति या अज्ञान के प्रदेश में खिंचे चले जाते हैं।

हमारा अहंकार ऐसा बहुरुपिया है, जो अनेकों रुप धर कर हमारे साथ होने के बावजूद हमें नजर नहीं आता ! ऐसी स्थिति में हमारे विचार, वचन और कर्म में विषमता आ जाती है। अंतर्विरोध और लड़ाईयां भी इसी वजह से होते रहती हैं।

इसलिए धर्मशास्त्र प्रबोध करते हैं कि अखंड संपदा चाहने वालों को अहंकार के संग्रह से, अनियंत्रित विचारों के संग्रह से और धन के संग्रह से बच कर रहना चाहिए। क्योंकि ये तीनों हमें आनन्द की ओर जाने से रोकते हैं।

साथियों ! अहंकार बाहरी नजर और बाहरी चीजों के आकर्षण से आता है। हमारे मन में प्रतिदिन पैदा होने वाले करीब ६०,००० विचार भी इधर-उधर (बाहर) से आते हैं।

साथियों ! अहंकार की हरकतें हमें जाग्रत हुये बिना दिखाई नहीं देती। हमारा अहंकार ही संसारिक वस्तुओं एवं शारीरिक संभावनाओं के साथ जुड़कर 'मेरा-तेरा' का भाव पैदा करता है।

मिथ्या अहंकार ही अपने आप को दूसरों से अच्छा या श्रेष्ठ दिखाने का प्रयास करता है और जीवन व्यवहार में हर प्रकार का दिखावा करता रहता है। अहंकार ही हमेशा दूसरों की कमियां देखता रहता है और अच्छाईयों को देख ही नहीं पाता है। आत्म-जाग्रति की बात पर ध्यान न देकर दूसरों से लडने के लिए हंमेशा तत्पर रहने वाला हमारा अहंकार ही है।

हमारा अहंकार हमेशा यह कहा करता है कि बिना खटपट किये जीवन की आवश्यकताएं पूरी हो ही नहीं सकती। हमें भविष्य की चिन्ताओं की अग्नि में डाल देता है। हमें वर्तमान घड़ी में नहीं रहने देता। अपनी प्रशंसा के वचनों को सुखदायी और निंदा के कडूवे वचन को दुःखदायी महसूस करता है। ज्ञान के प्रचार-प्रसार में भी औरों की निंदा और अपनी बड़ाई करनेवाला अहंकार ही है।

अकेलेपन और सबसे बिछड़ जाने के दुःख से हमें हमारा अहंकार ही व्यथित करता है। हमें ऐसी मान्यता में खिंच ले जाता है कि सुख के लिये बाह्य - सहयोग और समर्पण अनिवार्य है। अपना प्रभुत्व गँवा देने से या अपनी निर्बलता का पता सबको न चल जाये, इसके लिए डरता रहता है। दूसरे कहते हैं इसीलिये मुझे भी दान, सेवा, सतसंग और प्रणाम आदि करना चाहिए या फिर समाज में मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी इसीलिये यह सब करना है - यह हमारे

अहंकारकीही सोच है।

साथियों ! अब हम अहंकारके विविध रुपों, अहंकार के प्रभाव और निर्मूलन के उपायों पर प्रकाश डालने वाली (तारतम वाणी में वर्णित) मोतीरुप चौपाईयों का आत्म-मंथन करेंगे। इनके द्वारा आप पायेंगे कि इस संसार में गृहस्थ, साधु, संस्था या स्थान - सभी अहंकारसे ग्रसित हैं। आत्मा कोझंकृतकरनेवालीब्रह्मज्ञान कीइन चौपाईयों को प्रार्थनामय होकर पढें, सोचें, समझें और फिर आचरण में लाने का प्रयास करते रहें। उम्मीद है, प्रस्तृत पुष्पों की सुगन्धि से आप काजीवन निज-आनंद कीअखंड सम्पदा से भरने लगेगा।

<u>प्रतिष्ठा चाहने वाला अभागी है !</u>

इन माया में कोईबुजरकी,
छूट खुदा जो लेवे।
सो तेहेकीकआपे अपना,
पाया फलसो भी खोवे ॥ किरंतनः१०२/५

"साथियों ! इस संसार में मान बड़ाई की भावना या बड़प्पन का मोह ही सर्वनाश का कारण है। जिस किसीने मान बड़ाई काजरा सा भी भाव दिल में ले लिया, उसका उद्धार कोई भी नहीं कर सकता। इस नश्वर मायावी संसार में परमात्मा को छोड़कर यदि कोई प्रतिष्ठा या बड़ाई चाहता है, तो वह निश्चित ही अपना पाया हुआ फल(परमेश्वर की

कृपा), अपना मानव जीवन अपने हाथों से खो देता है।"

खोवे जोश बंदगी खोवे,
और साहेब कीदोस्ती।
बिना इश्क जो बुजरकी,
सो सब आग जानो तेती ॥ किरंतनः१०२/६

"संसार में प्रतिष्ठा चाहने वाला अभागी व्यक्ति साधना से प्राप्त बल, प्रियतम परब्रह्म से प्राप्त प्रेरक बल(जोश) और धामधणी का प्यार भी गँवा देता है। इश्क के रस से रहित हर प्रकार की प्रतिष्ठा की भावना कोनिश्चित रुप से अग्नि के समान समझो।"

जो कोईमारे इन दुश्मन को,
करेसब दुनियां कोआसान।
पोहोंचावे सबों चरन धणी के,
तो भी लेना ना तिन गुमान ॥ किरंतनः१०२/११

"जो भी इस प्रतिष्ठाभाव (अहंकार) रुपी शत्रु को मार लेता है, वह सारी दुनिया को आसानी से अपने अनुकूल बना लेता है। यदि कोई ज्ञानी सभी लोगों को परब्रह्म के चरणों तक पहुंचा दे, तो भी उसे अपने मन में बड़प्पन का अभिमान नहीं आने देना चाहिये।"

<u>प्रतिष्ठा की भावना को जूते से</u>
<u>ठोकर मार दो।</u>

जो तूं चाहे प्रतिष्ठा,
धराए वैरागी नाम।

साध जाने तोको दुनिया,
वह तो साधों करी हराम ।। किरंतन:१०३/१

"साधुजनों ! यदि तुम वैरागी होकर भी मान सम्मान की अपेक्षा रखते हो, तो भ्रम में हो। संसार के लोग तुम्हारी बाह्य वेशभूषा से तो तुम्हें साधु मान लेगें। लेकिन तुम्हारी वास्तविकता तो कुछ अलग ही है। सच्चा साधु वही है जिसने प्रतिष्ठा के मोह को त्याज्य समझकर छोड दिया हो।"

मार प्रतिष्ठा पैजारों,
जो आए दगा देत बीच ध्यान।
एही सरुप दज्जाल को,
उडाए दे इनें पेहेचान ।। किरंतन:१०३/२

"ऐसी मान प्रतिष्ठा की भावना को जूते से ठोकर मार दो, जो तुम्हारे ध्यान व चिंतन में और अपने प्रियतम धणी की पहचान में रुकावटें डालती हों। प्रतिष्ठा की चाहना माया ही का रुप है। इसे पहचान कर मन से सदा-सदा के लिए निकाल दो।

धर्मों में बाह्याडम्बर का मूल अहंकार ही है।

अस्नान करी छापा तिलक देओ,
कंठ आरोपो तुलसी माल।
गिनानी कहावो साध मंडली,
पण चालो छो केही चाल ।। किरंतन:१२८/१२

'साधुजनों ! तुम बार-बार स्नान करके पवित्र कहलाते हो। माथे पर कई प्रकार के छाप-तिलक लगाकर बाहरी दिखावा करते हो ! गले में तुलसीमाला पहनकर अपने आप को वैष्णव कहलाते हो। ज्ञान चर्चा करके साधुओं की मंडली में ज्ञानी भी कहलाते हो ! परंतु तुम्हारा आचरण क्या तुम्हारे मुख से बोले जाने वाले ज्ञान के वचनों और तुम्हारी वेश-भूषा के अनुरुप है ? जरा सोचो !"

लोक लाज मरजादा छोड़ी,
तब ज्ञान पदवी पाई।
एक आग ज्यों छोटी बुझाई,
त्यों दूजी मोटी लगाई ।। किरंतन:५/४

'साधुजनों ! आपने नश्वर संसार की झूठी लोक-लाज, समाजिक मर्यादाओं को छोड़ा। फल स्वरुप आपने 'साधु' व 'ज्ञानी' होने की पदवी प्राप्त की। ईस प्रकार आपने वित्तेषणा, दारेषणा (धन व सगे संबंधियों का मोह) की छोटी आग को बुझायी, किन्तु मान-प्रतिष्ठा की दूसरी बड़ी आग अपने हृदय में प्रज्वलित कर ली। क्या यही वैराग्य है ?"

अब छोड़ो रे मान गुमान ग्यान को,
एही खाड बड़ी भाई।
एक डारी त्यों दूजी भी डारो,
जलाए देओ चतुराई ।। किरंतन:५/६

'धर्म के मार्ग पर चलने वालों ! प्रतिष्ठा के मोह और ज्ञान के अहंकार को इसी वक्त छोड दो। निश्चित ही परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में यह सबसे गहरी खाई (बड़ी बाधा) है। तुमने जिस प्रकार धन-परिवार के मोह का पहला बंधन तोड़ा है, उसी प्रकार मान-प्रतिष्ठा की चाहना (लोकैषणा) का भी त्याग कर दीजिए। प्रियतम को पाना है तो ज्ञान की चतुराई (विद्धता के अहंकार) को जला दो।"

दयो हरे मसीत अपासरे,
सब लगे माहें रोजगार।
बाहेर देखावें बंदगी,
मांहे माया मोह अहंकार।। किरंतनः ३०/७

"सभी धार्मिक स्थान आर्थिक उपार्जन में व्यस्त है। बाहर से तो सब बढ़ चढ़ कर भक्तिभाव का प्रदर्शन करते हैं। लेकिन सर्वत्र माया, मोह और अहंकार की अग्नि जल रही है।"

'मैं पने' की मौत का शरबत पीओ और
परब्रह्म को हृदय में बिठा लो।

ऐसे खेल अनेक एक खिन में,
करे अग्याएं करतार।
सो करतार ठौर क्यों पाइए,
जो लों उड़े न माया मोह अहंकार।। किरंतनः ३०/१४

"सत्य के खोजियों ! परमात्मा अपनी इच्छा

(आज्ञा) मात्र से पलभर में ऐसे आने को ब्रह्माण्ड (खेल) बनाते और मिटाते रहते हैं। जब तक तुम्हारा माया, मोह और अहंकार समाप्त नहीं होता, तब तक ब्रह्म के अखंड धाम की पहचान किस प्रकार हो सकती है ? (अर्थात् नहीं हो सकती)"

पहेले पी तूं शरबत मौत का,
करतेहे की मुकरर।
एक जरा जिन शक रखे,
पीछे रहो जीवत या मर।। खिलवतः २/३१

"हे आत्मा ! सबसे पहले तू अपने मिथ्या शरीर के "मैं" पूर्णरुप से समाप्त कर दे। अहंकार की मौत के इस शरबत को तू अभी पी ले, यह निश्चय कर लो कि धणी पल पल तुम्हारे साथ हैं। प्रियतम धणी की अंगना होने में लेशमात्र भी संशय मत रख। आत्म-स्वरुप में खड़े हो जाने के बाद सांसारिक मोह से तुम मुक्त हो जाओगी, फिर तुम्हारे लिये जीवित रहना या मर जाना यह दोनों एक ही बात होगी।"

महामत होसी सब जाहेर,
मिले अक्षरातीत भरतार।
वैराट होसी नेहेचल,
उड़्यो माया मोह अहंकार।। किरंतनः ३०/१५

"प्रियतम परब्रह्म की पांच दिव्य शक्तियों से विभूषित महामति जी कहते हैं कि अब हमे प्रियतम अक्षरातीत मिल गए हैं, इसलिए सारे गुह्य रहस्य दुनिया में प्रकट हो जायेंगे। अब ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में सब के दिलों में स्थित मोह, माया और अहंकार समाप्त हो जाने से सारा ब्रह्मांड अखंड सुख (मोक्ष) प्राप्त करेगा।"

अहंकार निर्मूलन की एक मात्र औषधिः तारतम ज्ञान

साथियों ! तारतम ज्ञान कहता है कि हम सब एक ही सच्चिदानंद प्रियतम परब्रह्म की आनन्द अंग रुपा आत्मायें हैं। यदि वे हमारे धणी हैं, तो हम उनकी आत्म-अंगनायें। परमधाम हमारा निज-घर है। लेकिन संसारी खेल में आकर अपने 'स्व' को भूलकर हमारी आत्मा, अपनी बाह्य प्रतिभा (सेल्फ इमेज) को ही सब कुछ मानने लगी है। आत्म-स्वरुप की पहचान ही अहंकाररुपी रोग को मिटाने की चाबी है।

ए बानी मैं मारेय की,
सुनी होए मोमिन।
दुनी तरफ की जीवती,
क बहूं न रहेवे इन॥ खिलवतः ५/३१

"ब्रह्मात्माओं ! यह तारतम ब्रह्मवाणी 'मैं' (अहंकार-शरीर की मैं) के भाव को मिटाने वाली है

। यदि आप इसे ध्यान से सुनते हो व उस पर अमल करते हो, तो आप कभी भी संसार की तरफ से (आशा-तृष्णा में) जीवित नहीं रह पाओगे।"

कहत कहलावत तुम हीं,
करत करावत तुम।
हुआ है होसी तुमसे,
ए फल खुदाई इलम॥ खिलवतः ३/१३

"प्रितम ! आप के खुदाई इलम की फलश्रुति यही है कि सब कुछ कहने और कहलानेवाले आप ही हो। करने करवानेवाले भी आप ही हो। जो भी हुआ है या होना है, वह सब आप ही से हुआ है, होगा। प्रियतम ! मेरा अपना अलग अस्तित्व है ही नहीं - बस, "तूम ही तूम" हो ! (राजजी का हुक्म ही सब करने-करवाने वाला है, यही धणी की मैं है)"

एही मैं है हुकम,
एही मैं नूर जोश।
ऐही मैं इलम हक का,
एही मैं हक करे बेहोश॥ खिलवतः ३/७

"साथियों ! "प्रियतम धणी की मैं" की महिमा तो देखो। यह स्वयं प्रियतम ही का स्वरुप हैं, जो हुक्म के रुप में सब का मक रती है। नूरी जोश भी हक (राजजी) की मैं है। तारतमज्ञान भी राजजी का स्वरुप है राजजी की मैं (ब्रह्मसत्ता-हुक्म) ने ही हम पर फरामोशी का आवरण डाला है।

साथियों ! जाग्रत आत्मा अहंकार या 'मैं खुदी' के भाव से परे हो गयी होती है । अत: वह कभी भी अपनी प्रतिष्ठा को आदर्श बनाने की कोशिश नहीं करती। सदा सरल, सहज और भोलापन अपनाये रहती है । उसकी लीला अनायास, अकारण और इच्छा रहित होती है। प्रियतम परमेश्वर की कृपा और सत्गुरु की सहायता से ज्ञान के विषय में वह बेशक हो गई होती है । उसके मन, वचन और कर्म में एकरुपता होती है।

जाग्रत आत्मा की कथनी, रहनी और आत्मिक दशा प्रियतम धणी की इच्छा के अनुकूल होती है । वह सदा अपने प्रियतम की याद में तड़पती है, सर्वस्व समर्पण और कर्तव्यनिष्ठा की भावना में स्थिर रहती है । निर्मल हृदय में अपनी गलतियों के लिये पश्चात्ताप करते हुए प्रेम-सेवा में समर्पित रहती है। धणी की इच्छा को पहचान कर और फिर उसको उनका आदेश मान कर चलती है । ये सभी लक्षण हमारे अन्दर ''प्रियतम धणी की मैं'' के प्रवेश की और मिथ्या ''मैं खुदी'' के खत्म होने की निशानियां हैं।

<u>अहंकार को परमार्थ की ओर मोड़ना हमारी आत्म-जाग्रति पर निर्भर है ।</u>

साथियों ! यह सच है कि अहंकार तो दुनिया देखने का हमारा एक चश्मा ही है । हमारी

कौतुहलता और सजगता ही वह चाबी है, जो हमारे सामने उपस्थित विकल्पों को चुनने में सहायक होती है। अहंकार के इस चश्में का उपयोग जीवन में कब और कैसे करना है यह हमारी आत्म-जाग्रति पर निर्भर है। अत: यदि हमने अपने आत्म-स्वरुप को जान लिया, तो अहंकार परम कल्याणकारी बन सकता है । हमारी आध्यात्मिक यात्रा में और जन समुदाय की सेवा करने में बड़ा ही सहायक हो सकता है। इसीलिये तारतम वाणी मिथ्या अहंकार को धाम के आत्म-गौरव में परिवर्तित करके या परमार्थ की ओर मोड़ने की युक्ति बताती है।

सोई लोभ सोई लालच,
सोई अपनों अहंकार।
सोई कामप्रेम करतब,
सोई अपना बेहेवार।। किरंतन:८२/२०

''साथियों ! मिथ्या मैं-पने की मृत्यु से अब प्रेम का स्वरुप खड़ा हो चुका है। अब लोभ करें तो प्रियतम से अधिक से अधिक आनन्द लूट लेने का करें। लालच भी उनसे बार-बार मिलने की करें। अहंकार भी प्राणेश्वर की अंगना होने का करें! अब यही काम और यही एक मात्र कर्तव्य है । यही प्रेम की रीत और यही सच्चा व्यवहार है !''

प्रेम की अनुपस्थिति का दूसरा नाम है अहंकार ।

साथियों ! अहंकार अज्ञान से और प्रेम ज्ञान से उत्पन्न होता है । यदि ज्ञान की अनुपस्थिति का दूसरा नाम अज्ञान है, तो प्रेम की अनुपस्थिति का दूसरा नाम अहंकार है । जब अहंकार कहता है कि ''मैं हूँ'', तो प्रेम कहता है, मैं कुछभी नहीं हूँ'' ''मैं हूँ ही नहीं'' । इसीलिए तो कहा जाता है कि - प्रेम की गली इतनी संकरी होती है कि इसमें ''मैं-पना'' और ''परब्रह्म'' ये दोनों एक साथ समा ही नहीं सकते।

इसीलिये अंग्रेजी में अहंकार को 'ईगो' **(EGO)** कहते हैं । 'ईगो' का अर्थ होता है: ''एर्जीग गोड आउट !''**(Edging God Out)** अर्थात, जैसी ही अहंकार आया, परमात्मा (या प्रेम) गायब ! इस तथ्य को श्री प्राणनाथ बड़े ही सुन्दर ढ़ंग से समझाते हैं :

मारा कह्या का ढ़ाका ह्या,
और कह्या हो जुदा ।
एही मैं खुदी टले,
तब बाकी रह्या खुदा ।। खिलवत: २/३०

''अपने अन्तर्मन में गलती से भी यह भाव न निकले या मुख से ऐसा एक शब्द भी ना निकले कि ''मैंने'' अपने अहम भाव को निकाल दिया, इसे जड़मूल से नष्ट कर दिया या हमेशा के लिए अपने

से जुदा कर दिया । साथियों ! अगर ऐसा रंचक मात्र भाव भी जब आपके दिल में न आये, तभी जानना कि मिथ्या 'मैं खुदी' की मृत्यु हो गयी है । अपने अलग अस्तित्व होने के भाव के अभाव में बस एक परमात्मा ही रह जाते हैं । यहाँ श्री प्राणनाथ जी अपनी ''मैं'' समाप्त करने की युक्ति बता रहे हैं ।

जीवते मारिए आपको,
सब्द पुकारत हक ।
जो जीवते न मरेंगें मोमिन
तो क्या मरेंगें मुनाफक ।। कया.नामा छो.: १/१०४

''साथियों ! प्रियतम की तारतम वाणी पुकार-पुकार के कह रही है कि तुम इस नश्वर तन में जीवित रहते हुए ही अपने अहंकार-जनित सम्पूर्ण अस्तित्व को समाप्त कर दो । धणी के चरणों में समर्पित हो जाओ । यदि नश्वर तन में रहते हुए ब्रह्मात्माएं ही ऐसा नहीं कर पायेंगी, तो क्या संसार के श्रद्धा से रहित लोग ऐसा कर लेंगे ?''

ज्ञान और चतुराई के अहंकार से हमेंशा सावचेत रहें ।

साथियों । ज्ञान का उद्देश्य ही प्रेम है । यदि ज्ञान में से अहंकार फलित होता है तो इसका मतलब यही होता है कि अभी ज्ञान हुआ ही नहीं है । निम्न चौपाइयों में ज्ञान से जागृत हुअी आत्मा की सोच प्रतिबिम्बित होती है । नियमित रुप से स्वयं के साथ

और अपने प्रियतम के साथ इस प्रकार का वार्तालाप करते रहना ही अहंकार निर्मूलन का उत्तम उपाय है।

इलम चातुरी खूबी अंग की,
मोहे एही पट लिख्या अंकूर।
एही न देवे देखने,
मेरे दुल्हे के मुख का नूर॥ किरंतन: ६२/४

साथियों ! ज्ञान का प्रवचन करने की चतुराई तन की विशेषता है । ज्ञान की अभिव्यक्ति की चतुराई ही मेरे धाम दुल्हा के बीच में पर्दारुप है। यानि मुझे उनके मुखारविन्द के नूर का दर्शन नहीं करने देती।

मोको मार छुडाई बंदगी,
सो भी बुजरकी इन।
ऐसी दुश्मन ए बुजरकी,
मैं देखी न एते दिन॥ किरंतन: १०२/९

हे धणी ! मैं अन्त:निरीक्षण करती हूँ तो यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि प्रतिष्ठा व झूठे सम्मान में डूबने (भ्रमित होने) के कारण ही मैं प्रेम व चितवनी के मार्ग से भटक गई (मान प्रतिष्ठा ने मुझे बंदगी से दूर कर दिया)। मैंने आज तक मान-प्रतिष्ठा जैसा बड़ा शत्रु नहीं देखा।

<u>प्रियतम से मांगना है तो सिर्फ प्रेम मांगो,</u>
<u>खुदाई खिताब नही ।</u>

साथियों ! दिव्य प्रेम की प्राप्ति ही आत्मा की सर्वोत्तम लक्ष्य है, मान प्रतिष्ठा नहीं। प्रेम से आत्मा

अपने प्रियतम परब्रह्म से जुड़ जाती है। यह अनन्य प्रेम नवधा प्रकार की भक्ति से भी बढ़कर है, जैसा ब्रजमंडल की गोपियों ने लोक-वेद मर्यादाओं को तोड कर श्री कृष्णजी से प्रेम किया था। अत: प्रत्येक आत्म-खोजी को अपने प्रियतम परब्रह्म से सिर्फ प्रेम (इश्क) ही मांगना चाहिए। हमेशा इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि ज्ञान का चातुर्य और उस से प्राप्त होनेवाली बड़ाई साधना में बाधारुप है, सच्चा ज्ञान तो सिर्फ प्रेम की चाहना रखता है, मान-प्रतिष्ठा की नहीं।

हक इलम के जो आरिफ,
मुख नूरजमाल खूबी चाहें।
चाहें चाहें फे रफे रचाहें,
देख देख उड़ावे अरवाहें॥ **सिन. २०/१**

ब्रह्मज्ञान के जो सच्चे जानकार (ज्ञानी) होते हैं, वे प्रियतम परब्रह्म के नूरी मुखारविंद की शोभा पुन: पुन: देखना चाहते है और उसे देख देख कर उस मे स्वयं को कुर्बान कर देते हैं।

मांगत हों मेरे दुल्हा,
मन कर कर मवचन।
ए जिन तुम खाली करो,
मैं अर्ज करुं दुल्हिन॥ किरंतन: ६२/१

"हे मेरे प्राणाधार धाम दूल्हा ! मैं आपकी आत्म-दुल्हिन मन, वचन और कर्म से आपके श्री चरणों में विनयपूर्वक एक ही प्रार्थना करती हूं कि

आप मुझे अपने प्रेम से कभी भी वंचित न करें। आपके पवित्र चरणों के प्रति मेरे दिल में सदा ही अनन्य प्रेम बना रहे।"

मेरे धणी तुमारी साहेबी,
तुम अपनी राख्यो आप।
इश्क दीजे मोहे अपनों,
मैं तासों करुंमिलाप॥ किरंतनः६२/२

"मेरे धणी ! इस मायावी खेल में आपने जो अपनी साहेबी (सत्ता-स्वामित्व) और बड़ाई (मान-प्रतिष्ठा) मुझे दे दी है, उसे अपने पास ही रख्यो। मुझे तो केवल अपना इश्क ही दीजिये, जिससे मैं आपसे प्रत्यक्ष मिल सकूं।"

ना चाहो मैं बुजरकी,
ना चाहों खिताब खुदाए।
इश्क दीजे मोहे आपनों,
मोहें याहीं सों मुद्दाए॥ किरंतनः६२/३

"मेरे प्राण प्रीतम ! ना मैं किसी भी प्रकारकी प्रतिष्ठा चाहती हूं, और ना ही खुदा का खिताब (नाम)। मुझे तो बस आप अपना इश्क दीजिये। इसी पर मेरा सारा मुद्दा (ध्यान-चितवनी) निर्भर है।"

जिन दयाएं परदा उडाईया,
मैं फेरफे रमांगों सो मेहेर।
इश्क दीजे मोहे अपना,
जासों लगे बुजरकीजेहेर॥ किरंतनः६२/१३

"हे धाम दूल्हा ! आपकी जिस मेहर (लाड) ने

मेरे अज्ञान व भ्रम के पर्दे को उड़ा दिया है, उसी मेहेर को मैं आपसे बार-बार मांगती हूं। धणी ! मुझे आप अपना इश्क (विरह-तड़प) दीजिये, जिससे मुझे यह बड़प्पन (मान-प्रतिष्ठा) जहर के समान लगने लगे।"

प्रेम की अनुपस्थिति का दूसरा नाम है अहंकार। अहंकार अज्ञान से और प्रेम ज्ञान से उत्पन्न होता है। परमात्मा के ध्यान एवं दर्शन में बाधा रुप ज्ञान और चतुराई के अहंकार से हंमेशा सावचेत रहें।

<u>अहंकार का सूक्ष्मतम स्वरुपः प्रियतम धणी के एहसानों को भूल जाना।</u>

मैं मैं करतमरत नहीं,
और हक को लगावे दोष।
अब मेहर हक ऐसी करे,
जो इन मैं थे होउं बेहोश॥ खिलवतः २/२२

"साथियों ! सबसे बडी 'मैं खुदी- अहं की भावना' यही है कि हम (आत्मायें) अपने प्रियतम परमात्मा के एहसानों को भूल जायें, अपने दुःख के लिए उनको दोषी ठहरायें, अब हे प्रियतम श्री राज ! आप ऐसी कृपा कीजिये की इस मैं-अहं से मैं शून्य (रहित) हो जाऊं।"

उपजे उपजावे सब हक,
हक देवें दिलावें।
मैं जो करतगुन्हेगारी,
सो बीच काहेको आवे॥ खिलवतः २/१९

"हमारे हृदय में जो भी इच्छा उत्पन्न होती है,

उसे उपजाने वाले और उन इच्छाओं को पूरी करने-करवाने वाले प्रियतम परमात्मा ही हैं। उनकी कृपा के प्रति संदेह करके (उन्हें दोषी ठहरा के) मैं गुनाह कर रही हूं। पता नहीं, मेरे और प्रियतम के अखंड संबंध के बीच ऐसा भाव क्यों आ गया ?"

हकें पोहोचाई इन मजलें,
और दोष हक को देवत।
एही मैं मारी चाहिए,
जो बीच करे हरकत।। खिलवत: २/२०

"जिस परब्रह्म परमात्मा ने तारतम ज्ञान से मुझे जाग्रत किया और इस आत्मिक स्थिति में पहुंचाया कि मैं अपने आप को पर-आत्म स्वरुप में देखने लगी, फिर भी मैं उन्हीं को दोष देती हूं। इस प्रकार का उल्टा भाव या विचार मन में आना भी मेरी "मैं खुदी" ही है। साथियों संकल्प कर लें कि इस बहुत ही सूक्ष्म अहमभाव को भी अब मुझे समाप्त कर देना है, जो प्रियतम से मिलन की राह में बाधा बन रही है।"

<u>प्रियतम परमात्मा से दोस्ती व प्यार निभाने की महत्वपूर्ण युक्तियां।</u>

अब जो घड़ी रहो साथ में,
होय रहियो तुम रेणु समान।
इत जागे को फल एही है,
कोई चेत लीजो चतुर सुजान।। किरंतन:८९/११

"अब जितने भी पल अपने साथियों के बीच

इस जागनी लीला में बिताने हैं, बस पाँव की धूल बनकर जिएं। इस प्रकार की विनम्रता ही संसारी खेल में जागने का एक मात्र फल (लाभ) है। यदि कोई चतुर और ज्ञानवान है तो मेरी इस बात से सावचेत हो जाओ। प्रियतम धणी का प्यार और सम्मान पाना है तो विनम्रता का भाव सदा बनाये रखिये।"

ज्यों ज्यों गरीबी लीजे साथ में,
त्यों त्यों धणी को पाईए मान।
इत दोए दिन का लाभ जो लेना,
इही वचन जानो प्रवान।। किरंतन:८९/१२

"आत्म-प्रेमी साथियों के समूह में जितना ज्यादा नम्रतापूर्ण (अहंकार रहित) व्यवहार करोगे, उतना ही प्रियतम धाम धणी के लाड-प्यार व सम्मान के पात्र बन पाओगे। इस नश्वर जगत् में दो दिन का जो जीवन बचा है, उस में लाभ लेने योग्य यही एक मात्र वस्तु है (चरणरज बनकर सुंदरसाथ की सेवा करना)। इस बात को शत्-प्रतिशत सत्य जानना।"

महामत कहे ईमान इश्क की,
शुक्र गरीबी सबर।
इन बिध रुहें दोस्ती धणी की,
प्यार करसके त्यों कर।। किरंतन:१०२/१२

"प्रियतम प्राणनाथ की पांच दिव्य शक्तियों से विभूषित श्री महामति जी हमें सीख देते हैं कि अपने

जीवन में अटूट श्रध्धा, इश्क की लगन, कृतज्ञता भाव, विनम्रता भाव, संतोष और धैर्य धारण करलो। इस तरह ही प्रियतम धामधणी के साथ दोस्ती कीजा सकती है। निर्णय तुम्हारा अपना है। इन बातों को ध्यान में रख करयदि प्रियतम से प्यार करसकते हो तो किजीए।"

महामत कहेए मोमिनों,
हकें बैठाए तले कदम।
कसीहांसी बीच अर्स के,
जो करीहुक मेंइलम ।। सिंधी: १६/२०

"प्रियतम की पूर्ण शक्तियों से युक्त महामति जी कहते हैं, हे ब्रह्मात्माओं ! प्रियतम धणी ने (मूलमिलावे में) हमें अपने चरणों में बिठाकरमाया का खेल दिखाया है। उनके आदेश और तारतम ज्ञान ने इस जगत में हमारी जो स्थिति बना रखी है, उसकी हंसी वे परमधाम में करेगें। (तारतम ज्ञान ने हमे पहचान तो करा दिया किन्तु हुक्म जाग्रत नहीं होने देता)"

साथियों ! बिना ''मैं खुदी'' को खत्म किये खुदा नहीं मिलते। मुश्किल है अपने आप को मिटाना। लेकिन जो सुख शांति तुम्हें 'मैं' की भावना में नहीं मिली, वह 'मैं' खत्म होने पर मिलेगी। अपने आप को धूल के कण के समान समझो। तभी तुम्हारा "ब्रह्मसृष्टि" कहलाना

सार्थक होगा। धीरजपूर्वक सजगतापूर्ण कथनी, रहनी और आत्मिक स्थिति में एकरुपता लाने के प्रयास करते रहना है। गहराई में जाकरहल्केपनका, आनन्द का, एकात्मता और लय बध्ध जीवन का अनुभव करना है। यही अहंकार की मौत और आत्मा से जुड़ने कामार्ग है।

मंगल कामना

।। सप्रेम प्रणाम जी।।

इतना तो अवश्य याद रखें ।

- प्रतिष्ठा चाहने वाला अभागी है, जो साधना से प्राप्त बल, परब्रह्म का प्रेरक बल जोश और धनी का प्यार - यह सब अपने ही हाथों गँवा देता है ।
- प्रतिष्ठा की भावना को जूते से ठोकर मार दो । यही तो ध्यान व चितवन में बाधा है ।
- धर्मों में बाह्य-आडम्बर का मूल अहंकार ही है । मान प्रतिष्ठा की चाह ने ही वैराग्य का रुप बिगाड़ दिया है ।
- 'मैं पने" की मौत का शरबत पीने से ही प्रियतम धनी हृदय में विराजमान होते हैं । माया, मोह और अहंकार समाप्त हुए बिना परमधाम नहीं मिलता ।
- आत्मा और परमात्मा के बीच अहंकार ही एक पर्दा है । तारतम ब्रह्मज्ञान ही अहंकार निर्मूलन की उत्तम औषधि है, जिसे सुन कर अमल में लानेवाला संसार की तरफ से जीवित नहीं रह सकता।
- परमात्मा का हुक्म ही सब करने व करवाने वाला है, उन्हीं के हुक्म से सब हुआ है, हो रहा है और होगा, यही धणी के हुक्म की मैं है ।
- प्रेम की अनुपस्थिति का दूसरा नाम है अहंकार। अहंकार को परमार्थ की और मोड़ना हमारी आत्म-जाग्रति पर निर्भर है ।
- ज्ञान और चतुराई का अहंकार परमात्मा के ध्यान एवं दर्शन में बाधारुप है इस से सावचेत रहें ।
- प्रियतम परमात्मा से मांगना है तो सिर्फ प्रेम मांगो, खुदाई खिताब नहीं । इसी से सब कुछ सहज ही मिल जायेगा ।
- प्रियतम के एहसानों के प्रति कृतज्ञताभाव का अभाव 'मैं' खुदी का सबसे सूक्ष्म स्वरुप है ।
- प्रियतम परमात्मा से दोस्ती व प्यार निभाने की महत्वपूर्ण युक्तियां :- अटूट श्रद्धा, इश्क की लगन, कृतज्ञताभाव, विन्रताभाव, संतोष और धैर्यपूर्ण जीवन ।